'अभिनव वेद पाठमाला' में वेदों की जीवन दृष्टि

प्रो. दयानन्द भार्गव

'अभिनव वेद पाठमाला' में मल्लिनाथ की टीका का 'नामूलं लिख्यते किञ्चित्' वाक्यांश शीर्षक बनाया है। इसका यह अभिप्राय है कि हम पाठकों को वेद का अभिप्राय वेद के ही शब्दों में देना चाहते हैं। वेद के भाष्यों में भाष्यकारों का परस्पर पर्याप्त मतभेद है। उस मतभेद में जाने से पहले यह उचित होगा कि हम वेद का मूल आशय वेद के ही शब्दों में समझ लें। अतः इसमें वेदों के ३५ ऐसे मन्त्र दिये हैं, जिनकी व्याख्या में मतभेद की गुंजाईश न के बराबर है। इन मन्त्रों पर दृष्टिपात करें, तो कुछ कुछ बात स्पष्ट हो जाती है।

प्रथम तो यह स्पष्ट है कि वेद का जीवन के प्रति पूर्णतः आशावादी तथा सकारात्मक दृष्टिकोण है। वेद में जितनी चिन्ता अध्यात्म की है, उतनी ही चिन्ता लौकिकता की भी है। परवर्ती दर्शनों में संसार की निस्सारता पर बहुत अधिक बल दिया गया है। परिणाम स्वरूप लौकिक सुखों की न केवल उपेक्षा की गयी है, प्रत्युत निन्दा भी की गयी है। वैदिक दर्शन जिसे कामना कहते हैं, बौद्ध तृष्णा कहते हैं और जैन मोह कहते हैं, उसे त्यागने की बात कही जाती है। वित्तैषणा, पुत्रैषणा तथा लोकैषणा के छोड़ने की बात दर्शनों में ही नहीं, उपनिषदों तक में बारम्बार कही गयी है। किन्तु वेद में बारम्बार सम्पदा, स्वास्थ्य, यश और सम्पत्ति की प्रार्थना की गयी है–अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे यशसं वीरवत्तमम् (ऋग्वेद १.१.३) तथा दीर्घ जीवन की कामना की गयी है–जीवेम शरदः शतं पश्येम शरदः शतम् (अथर्ववेद १९.६७.१-२) स्पष्ट है कि वेद में सांसारिक सुखों के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं है और न संसार से पलायन का भाव है।

वेद के इस दृष्टिकोण का यह परिणाम हुआ कि वेद के ज्ञान को अपरा विद्या कह दिया गया जबकि परा विद्या उपनिषदों का विषय मानी गयी। अक्षर तत्व पराविद्या के द्वारा जाना जाता है और उसी से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है–(मुण्डकोपनिषद् १.४.४-५)। इसी आधार पर यूरोप के विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वेदों में आदिम जाति के विचार हैं, जिनका धर्म अथवा अध्यात्म की दृष्टि से बहुत महत्त्व नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारा ध्यान एक ओर तो श्री अरविन्द ने आकृष्ट किया, जिन्होंने अनेक वैदिक मन्त्रों का गम्भीर अध्यात्मपरक अर्थ किया, दूसरी ओर पण्डित मधुसूदन ओझा एवं उनकी शिष्य परम्परा ने विज्ञान नाम से मुख्यतः ब्राह्मण ग्रन्थों का सहारा लेकर एक गम्भीर समग्र जीवन दृष्टि

प्रदान की। इसके बावजूद पठन पाठन में अभी सायणाचार्य के भाष्य को ही महत्त्व दिया जा रहा है। स्वामी दयानन्द ने वेद का जो समाज परक अर्थ किया, वह भी परम्परावादी स्वीकार नहीं कर रहे। ऐसी स्थिति में हमनें प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में वेदों से सात ऐसे सूक्तों का चयन किया है, जिनके अध्ययन से वेदों की गम्भीरता और गरिमा तो प्रकट होती ही है, साथ ही इन सात सूक्तों की यह विशेषता भी है कि इनका किसी भी पद्धति के भाष्य को आधार क्यों न बनाया जाये, तथापि इतना स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में आदिम जाति के विचारों की अभिव्यक्ति नहीं है, अपितु एक गहरा चिन्तन है। इस दृष्टि से हमनें इन सातों सूक्तों का सायणभाष्य भी दे दिया है और साथ ही स्वयं पण्डित मधुसूदन ओझा की वेदविज्ञान पद्धति के अनुसार स्वोपज्ञ भाष्य भी दिया है।

इन सात सूक्तों के भाष्य को पढ़ने के बाद पाठकों का यह मत तो निर्विवाद रूप से बन ही जायेगा कि वेदों में एक गूढ़ गम्भीर सन्देश है। इस पृष्ठभूमि के साथ यदि वे वेद का परायण करेंगे तो उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वेद वस्तुतः एक समग्र जीवन दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। इसका एक संक्षिप्त परिचय पाठकों को इस अभिनव वेदपाठ माला के अनेक भूमिका-भागों तथा परिशिष्टों में प्राप्त हो जायेगा। ऊपर सामान्य भूमिका में दिये गये उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि वेदों में बहुदेववाद की पृष्ठभूमि में अद्वैत अथवा एकेश्वरवाद ही है। वेदों के देव नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणः वरुण ऋत का रक्षक है और व्रतों को धारण करता है-(ऋग्वेद ८.२५.८,१.२५.८)। ऋषि को यह ध्यान है कि उसे नैतिक मूल्यों का पालन करना है-(ऋग्वेद १.२५.१, ७.८९.५)। उसे यह खेद है कि उसने वरुण की मैत्री खो दी-(ऋग्वेद ७.८८.५)। वह कहता है कि वह जल के बीच भी प्यासा है-अपां मध्ये तस्थिवासं तृष्णाविदज्जरितारम्।(ऋग्वेद ७.८९.४)। यह वक्तव्य कबीर का स्मरण कराता है, जिन्होंने कहा था -जलबिच मीन प्यासी। अभिप्राय यह है कि वेद में जहाँ एक ओर सामाजिक और नैतिक मूल्यों का संकेत है जिसका उपबृंहण स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया तो दूसरी ओर अध्यात्म का भी संकेत है, जिसका उपबृंहण महर्षि श्री अरविन्द ने किया। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में इन दोनों ही प्रकार की धाराओं का समन्वय है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का भाष्य तथा महर्षि श्री अरविन्द का भाष्य पृथक् रूप से हिन्दी, अँग्रेजी तथा संस्कृत में भी उपलब्ध है। किन्तु पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा का भाष्य यत्र तत्र बिखरा हुआ है। प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में उसे ही एकत्र करके संक्षिप्त रूप में सम्पादित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस परम्परा का भाष्य हिन्दी अथवा अँग्रेजी में नही है, संस्कृत में है। इस अभाव की पूर्ति भी प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

जहाँ तक वैदिक देवों का सम्बन्ध है उनके अनेक नैतिक गुण वेदों में बताये गये हैं, जिसके

आधार पर स्वामी दयानन्द वेदों की व्याख्या एक आचार संहिता के रूप में कर पाये। उनके इस प्रयत्न का आधार ब्राह्मण ग्रन्थों का यह वाक्य है कि जो देवताओं ने किया वही मैं भी करूँ– यद्देवा अकुरवँस्तद् करवाणि। यह परम्परा सर्वमान्य है–देवो भूत्वा देवं यजेत्। अथर्ववेद के भूमिसूक्त की प्रथम पंक्ति वैदिक आचार संहिता का सारांश प्रस्तुत कर देती है–सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षां तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति(अथर्ववेद १२.१.१)। इस पंक्ति में पृथिवी को धारण करने की बात कही गयी है, यही वक्तव्य इस बात का आधार बना कि धर्म धारण करता है–धारणाद् धर्ममित्याहुः।

यद्यपि पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में ऋत और सत्य का एक पारिभाषिक अर्थ लिया गया है तथापि एक अन्य दृष्टि से भाषावैज्ञानिकों ने ऋत का लातिनी भाषा के rectus शब्द से सम्बन्ध माना है, जिससे अँग्रेजी का right शब्द आया। अर्थात् ऋत सम्पूर्ण नैतिकता का सूचक है और उसके विरुद्ध अनृत अव्यवस्था का सूचक है। ऋत सम्पूर्ण अस्तित्व से सामरस्य बनाये रखने का सूचक है। यज्ञ के लिए ऋत, सत्य, श्रद्धा और तप आवश्यक है(ऋग्वेद ९.११३.२)। ऋत के द्वारा ही मनुष्य दुःखों से पार जा सकता है(ऋग्वेद ९.१३३.६)।

ऋत के अतिरिक्त वेद में सत्य को महत्त्व दिया गया है।(ऋग्वेद १.१.५; ११३.४) ऋत और सत्य तप से प्रकट होते हैं(ऋग्वेद १०.१९०.१)। सत्य का सत् से सम्बन्ध है। इस अर्थ में ३३ देवता सत्य की ही अभिव्यक्ति हैं–युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्ताद।(ऋग्वेद ८.५७.२) उल्लेखनीय है कि वेद में अहिंसा की अपेक्षा भी सत्य को अधिक महत्त्व दिया गया है।

सत्य के साथ साथ वेद में तप की बहुत महिमा है। तप का सृष्टि के सर्जन में महत्त्वपूर्ण स्थान है–तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्। (ऋग्वेद १०.१२९.१२) वेद में तप का अर्थ प्राणशक्ति का प्रयोग है, न कि शरीर का सुखाना। प्राणशक्ति के द्वारा परिस्थिति का सामना करना तप है। तप से जुड़ा हुआ ब्रह्मचर्य है, जिसका अर्थ केवल मैथुन का त्याग ही नहीं है अपितु वेद का स्वाध्याय भी है। देवों ने ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा मृत्यु को जीता–ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नन्(अथर्ववेद ११.५.१९)। ब्रह्मचारी तप के द्वारा आचार्य को तृप्त करता है–आचार्यं तपसा पिपर्ति(अथर्ववेद ११.५.११)। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही कन्या युवा पति को प्राप्त करती है–ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्(अथर्ववेद ११.१५.१८)। ब्रह्मचर्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की तैयारी भी है, यद्यपि अपवाद रूप में कुछ ब्रह्मचारी आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन भी करते थे।

वैदिक दृष्टि से गृहस्थ का जीवन सबसे अधिक गौरवपूर्ण है।(अथर्ववेद ७.६०.६) वेदों में गृहस्थ की सम्पन्नता के लिए प्रार्थना की गयी है। (अथर्ववेद १४.२.२८) गृहस्थ के लिए संतति की कामना मुख्य है।(अथर्ववेद १४.२.१७-१८) वेद में स्त्री का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह सम्भवतः बाद में नहीं

रहा।(अथर्ववेद १४.१.४३-४४) इस प्रकार वैदिक दृष्टि में गृहस्थ का स्थान केन्द्र में है, सन्यास का वैसा महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार यद्यपि वेद में सन्यास के संकेत तो हैं तथापि मुख्य आश्रम ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ही है। ऋग्वेद में ऐसे परिब्राजक का भी उल्लेख है जो एक वन से दूसरे वन में घूमता है, निर्भय है और दुनियादारी की बातों से दूर रहता है-अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि। कथा ग्रामं न पृ%छसि न त्वा भीरिव विन्दती(ऋग्वेद १०.१४६.१)। वह फलों पर निर्भर रहता है और पशु उसे हानि नहीं पहुँचाते। (ऋग्वेद १०.१४६.५) ऋग्वेद में एक ऐसे सन्यासी का उल्लेख भी है जो आत्मशक्ति, श्रद्धा, तपस्या, प्रकाश और आनन्द की कामना करता है-आत्मनि करिष्यन्वीर्यम्(ऋग्वेद ९.११३.१), ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत(ऋग्वेद ९.११३.२), यत्र ज्योतिरजस्रम्(ऋग्वेद ९.११३.७), यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्रासाः कामाः(ऋग्वेद ९.११३.११)।

चार आश्रमों के अतिरिक्त वेद में चार वर्णों की व्यवस्था भी है। यहाँ वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि चारों वर्ण समाज के चार अंगो के समान है अर्थात् उन्हें परस्पर सामञ्जस्य रखते हुए कार्य करना चाहिए।(ऋग्वेद १०.९०.१२) उल्लेखनीय है कि वेद में चारों ही वर्णों के लिए समान रूप से तेज की प्रार्थना की गयी है-

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् (यजुर्वेद १८.४८)

बाद में निहित स्वार्थों के कारण वर्ण व्यवस्था ऊँच-नीच का भेदभाव का कारण बन गयी और इसके विरुद्ध जैन-बौद्धों से लेकर मध्यकालीन संतो ने विरोध किया और परिणाम स्वरूप सिक्ख धर्म जैसे अनेक मत वैदिक परम्परा से पृथक् हो गये। आवश्यकता इस बात की है कि वेद की उदार दृष्टि से ऐसी व्याख्या की जाये कि वर्णव्यवस्था को लेकर वेदों का विरोध न हो। यदि वर्ण व्यवस्था की संकीर्ण व्याख्या की जायेगी तो वह स्वीकार्य न होगी और परिणाम स्वरूप एक बड़ा वर्ग वेद के उदात्त संदेश से वंचित रह जायेगा। वस्तुतः वेद की मूल भावना मनुष्य और मनुष्य में भेद करने की नहीं है किन्तु कुछ ऐतिहासिक कारणों से वेदों की ऐसी छवि बन गयी कि उसके विरोध में स्वर उठते रहे। इस स्थिति को राष्ट्रिय हित में नहीं माना जा सकता। वस्तुतः वेद मानवमात्र की सम्पदा है और उसे इसी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

वेद के केन्द्र में यज्ञ है। इसी कारण सायणाचार्य ने सभी वेद मन्त्रों की यज्ञ परक व्याख्या की है। सायणाचार्य ने यज्ञ की जो व्याख्या की उसमें यज्ञ का अर्थ श्रौत यज्ञ है। जिनका विस्तार ब्राह्मण

ग्रन्थों में है। ये श्रौत यज्ञ अत्यन्त जटिल है और वर्तमान में उनका प्रचलन भी अत्यन्त विरल है। यह कहना भी कठिन है कि नासदीय सूक्त जैसे सूक्तों का प्रयोजन वैदिक कर्मकाण्ड रहा होगा। श्रीमद्भगवद्गीता जैसे ग्रन्थ में यज्ञ का एक व्यापक अर्थ लिया गया है जिसके अनुसार सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञ बन जाता है। यज्ञ की ऐसी व्याख्या ही वर्तमान युग में उपादेय है। वस्तुतः श्रौत यज्ञों को लेकर केवल जैन और बौद्ध ही नहीं उपनिषद् भी प्रश्न उठाते रहे हैं–प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः (मुण्डकोपनिषद् १.२.७)। ऐसी स्थिति में गीता का यह वक्तव्य उपादेय है कि हमारे सभी कर्म यज्ञ हैं–यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः (गीता ३.९)। अभिप्राय यह है कि हमारे सभी कर्म कर्तृत्व के अहंकार तथा फल की आसक्ति से मुक्त होने चाहिए, यही यज्ञ का अभिप्राय है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की जीवन दृष्टि

सायणाचार्य ने वेद की जो कर्मकाण्ड परक व्याख्या की उसका आधार ब्राह्मण ग्रन्थ है इसलिए परम्परा ने सायण की व्याख्या को स्वीकार किया। परम्परा ने यह भी माना कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद ही हैं–मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (यद्यपि स्वामी दयानन्द मन्त्र भाग को ही वेद तथा स्वतः प्रमाण मानते हैं।) इसका यह अर्थ हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर की गयी वेद की व्याख्या ही प्रमाणिक है और क्योंकि सायणाचार्य की व्याख्या का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ है इसलिए उनकी व्याख्या ही प्रमाणिक है। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा ने भी इसी मत को स्वीकार किया। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थवाद भाग को लेकर एक ऐसा ढाँचा खड़ा किया जिसे उन्होंने विज्ञान नाम दिया और जिसका श्रेय उन्हें दिया जाना चाहिए। विज्ञान शब्द का प्रयोग परम्परा में यज्ञ विद्या के लिए किया जाता है–विज्ञानं यज्ञं तनुते। ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर जो वेदविज्ञान का ढाँचा पण्डित मधुसूदन ओझा ने खड़ा किया वह वर्तमान युग के लिए उपयोगी भी है और परम्परासम्मत भी है। इसलिए उसका अपना महत्त्व है। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में प्रश्न यह आया कि उस परम्परा में ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और गीता का भाष्य तो किया गया किन्तु मन्त्र भाग का भाष्य उपलब्ध नहीं हुआ; मन्त्र भाग के कुछ ही सूक्तों पर वेदविज्ञान की परम्परा के विद्वानों ने अपनी लेखनी चलायी है। उसी भाग को लेकर प्रस्तुत संकलन में सात सूक्तों का भाष्य किया गया है और उसके साथ ही सायणाचार्य का भाष्य भी दे दिया गया है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ब्राह्मण ग्रन्थ की परम्पराका अनुसरण करते हुए भी सायणाचार्य के भाष्य में कुछ नवीन जोड़ा जा सकता है।

यदि हम ब्राह्मण ग्रन्थों पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रतीकों की भाषा में बोलते हैं। उदाहरणतः जब यह कहा गया कि देवता दिन का आश्रय लेते हैं और असुर रात्रि का आश्रय

लेते हैं, तो यहाँ दिन प्रकाश के माध्यम से ज्ञान का सूचक हो जाता है और रात्रि अन्धकार के माध्यम से अज्ञान की सूचक हो जाती है–अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः (ऐतरेयब्राह्मण ४.५)। यह भी कहा गया है कि जो व्रत का पालन नहीं करते देवता उनकी हवि ग्रहण नहीं करते–न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति(एतरेय ब्राह्मण ७.११)। इसी प्रकार जब ब्राह्मण ग्रन्थ विभिन्न देवों को अग्नि का ही रूप बता रहे हैं तो वे अनेकता में एकता की खोज कर रहे हैं(ऐतरेयब्राह्मण ३.४)। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थों में सभी देवताओं को एक दूसरे के साथ जोड़ा गया है, जो वेद के इस दृष्टिकोण का सूचक है कि सभी देवता एक ही शक्ति के अनेक रूप हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें यज्ञविद्या का विस्तार किया गया है। वस्तुतः यज्ञ केवल कर्मकाण्ड का ही अंग नहीं है, वे ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया के भी सूचक हैं–यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि युनक्ति(शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.११)। यज्ञ ऋत की योनि है–यज्ञे वा ऋतस्य योनिः (शतपथ ब्राह्मण १.३.४.१६)। यज्ञ का आधार ऋषि, देव और पितरों के प्रति ऋण हैं।(शतपथ ब्राह्मण १.७.२.१) यज्ञ देवों को प्रसन्न करने का ही आधार नहीं है, अपितु सामाजिक स्थिरता भी सुनिश्चित करते हैं। यज्ञ का आधार आदान-प्रदान है, जिसके कारण मनुष्य स्वार्थी होने से बच पाता है। शतपथ ब्राह्मण में सर्वमेध यज्ञ का उल्लेख है, जिसमें स्वयं की सबके लिए आहुति दे दी जाती है। (शतपथ ब्राह्मण १३.७.१.१) ज्ञान के बिना यज्ञ संसार में आवागमन का ही कारण बनता है ।(शतपथ ब्राह्मण १०.४.३.१०) यज्ञ की इसी प्रक्रिया का विस्तार उपनिषद् और गीता में हुआ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में व्रतों का विस्तार से वर्णन है। व्रत का अर्थ है कि मनुष्य दिव्यता को प्राप्त करे–तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति(शतपथ ब्राह्मण १.१.१.४, १.९.३.२३) दिव्य गुणों में सत्य मुख्य है।(शतपथ ब्राह्मण १.१.१.४, १२.८.२.४) सत्य धर्म है।(शतपथ ब्राह्मण ४.२.१.२६) सत्य का पालन तेज बढ़ाता है।(शतपथ ब्राह्मण २.२.२.१९) वस्तुतः सत्य ब्रह्म है। (शतपथ ब्राह्मण १४.८.५.१)

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य की बहुत प्रशंसा है। ब्रह्मचारी भिक्षा पर निर्भर रहता है।(शतपथ ब्राह्मण ११.३.३.७) ब्राह्मण ग्रन्थों में दान को बहुत महत्त्व दिया है।(शतपथ ब्राह्मण ११.५.७.१) ब्राह्मण सबका मित्र है, जो किसी की हिंसा नहीं करता–सर्वस्य वायं ब्राह्मणो मित्रं न वायं कञ्चन हिनस्ति (शतपथ ब्राह्मण २.३.२.१२) अहंकार से भरी वाणी आसुरी कही गयी है। (ऐतरेय ब्राह्मण २.७) देवता सदा आनन्द में रहते हैं। (शतपथ ब्राह्मण १०.३.५.१३) पुरा काल में मनुष्य भी देवता थे–मर्त्या ह वै देवा आसुः(शतपथ ब्राह्मण ११.१.२.१३)

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में जिस नैतिकता का विस्तार है, उसको आधार बनाकर उपनिषदों का

दर्शन विकसित हुआ। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की सरल उपासना तथा उपनिषदों के विकसित दर्शन के बीच सेतु का काम करते हैं। उनका कर्मकाण्ड भी नैतिकता का ही प्रतीक है। दर्शपौर्णमासेष्टि यज्ञ की व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों के दर्शन को देखा जा सकता है। ऐसी व्याख्या पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने अपने शतपथ ब्राह्मण के विज्ञानभाष्य में की है।

उपनिषदों की जीवन दृष्टि

वैदिक परम्परा में गम्भीर दर्शन का प्रारम्भ उपनिषदों से होता है। इस दर्शन का बीजारोपण वेद के ही नासदीय, पुरुष और वाक् जैसे सूक्तों में हो गया था जिनकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में की गयी है। उपनिषदों में आत्मसाक्षात्कार पर बल दिया गया और यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मसाक्षात्कार के बिना दुःख से मुक्ति नहीं हो सकती। उपनिषदों के ऋषियों ने सत्य का साक्षात्कार किया था इसलिए उपनिषदों को स्वतः प्रमाण माना गया है। वस्तुतः दर्शन के क्षेत्र में श्रुति नाम से संहिताओं की अपेक्षा उपनिषदों का ही उल्लेख होता है।

उपनिषदों में ऐसा संकेत भी है कि संहिताओं को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाने लगा था । छान्दोग्योपनिषद् में नारद कहते हैं कि उन्होंने वेद और वेदांग पढ़े हैं किन्तु आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया। (छान्दोग्योपनिषद् ७.१.२-३) मुण्डकोपनिषद् में वेदों को अपरा विद्या कहा गया है, जबकि अक्षर तत्त्व का ज्ञान परा विद्या से होता है। (मुण्डकोपनिषद् १.१५) यज्ञों को अदृढ नौका बताया गया है। कठोपनिषद् में यज्ञ विद्या का उपदेश देने के बाद भी यह कहा गया है कि स्वर्ग के सुख अनित्य हैं। (कठोपनिषद् १.१.२६) पुण्य क्षीण होने पर जीव संसार में पुनः लौट आता है। (मुण्डकोपनिषद् १.२.९-१०) मोक्ष में केवल दुःख का अभाव नहीं है, अपितु आनन्द भी है। इस प्रकार उपनिषदों में देवोपासना से आत्मसाक्षात्कार, स्वर्ग से मोक्ष और अभ्युदय से निश्रेयस की ओर झुकाव दृष्टिगोचर होता है। धन, संतति और यश की इच्छा को मोक्ष में बाधक माना गया है।

उपनिषदों की आचार मीमांसा की एक विशेषता यह है कि उसमें पाप-पुण्य से ऊपर उठने की बात कही गयी है। (कठोपनिषद् १.२.१२) सामान्य नैतिकता से ऊपर उठने का यह अर्थ नहीं है कि हम अनैतिक हो जायें। छान्दोग्योपनिषद् में तप, दान, ऋजुता, अहिंसा और सत्य की प्रशंसा है-अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति(छान्दोग्योपनिषद् ३.१७.४) अहिंसा के साथ दया का भी उपदेश दिया गया है। (बृहदारण्यकोपनिषद् ५.२.३) सत्य का महत्त्व उपनिषद काल में भी बना रहा। (बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१४) मुण्डकोपनिषद् का कहना है कि सत्य की ही जय होती है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१६.९) सत्य और तप के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार हो सकता है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१.५)

वेदों से लेकर उपनिषदों तक ब्रह्मचर्य की प्रशंसा निरन्तर होती रही है। (प्रश्नोपनिषद् १.१६) ब्रह्मचारी को दम और शम का पालन करना चाहिए। (तैत्तिरीयोपनिषद् १.४.२) परवर्ती उपनिषदों में अपरिग्रह की भी चर्चा है। (तेजोबिन्दु ३, जाबालोपनिषद् ५) इसी प्रकार दान की प्रशंसा भी है –त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोध्ययनं दानमिति(छान्दोग्योपनिषद् २.२३.१) संयम की प्रशंसा बारम्बार है। (कठोपनिषद् १.३.४-१०)अन्तर्मुखता को बहुत महत्त्व दिया गया है। (कठोपनिषद् २.१.१) आत्मसाक्षात्कार ध्यान से ही सम्भव है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१.८) श्वेताश्वतरोपनिषद् (१.१४) में ध्यान की प्रक्रिया विस्तार से दी गयी है। श्रद्धा(छान्दोग्योपनिषद् ७.१९), ज्ञान (तैत्तिरीयोपनिषद् २.१.१), निष्काम भाव (बृहदारण्यकोपनिषद् ४.३.२१) तथा तप (तैत्तिरीयोपनिषद् ३.२.१) आदि नैतिक गुणों का बारम्बार उल्लेख है। त्याग इन सब गुणों में मुख्य है। (ईशोपनिषद् १)

उपनिषदों में श्रेय और प्रेय के बीच विरोध दिखाया गया है। (कठोपनिषद् १.२.१) इस कारण ऐन्द्रिक सुखों की निन्दा भी की गयी है। (कठोपनिषद् १.२.२) इस प्रवृत्ति के कारण भारतीय चिन्तन में लौकिकता की उपेक्षा हो गयी और सन्यास की मुख्यता हो गयी। शनैः शनैः सामाजिक गुणों की उपेक्षा हो गयी तथा त्याग और तपस्या प्रतिष्ठित हो गयी। धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग की उपेक्षा हो गयी और मोक्ष मुख्य हो गया। किन्तु मोक्ष के साथ नैतिकता सदा जुड़ी रही।

अभिनव वेदपाठ माला की भूमिका में संहिता और ब्राह्मण के साथ उपनिषदों का भी विवरण देने का कारण यह है कि भारतीय परम्परा उपनिषदों को भी श्रुति मानती है। सायण जैसे भाष्यकार वेदों की व्याख्या करते समय उपनिषदों का उल्लेख करते हैं। वस्तुतः भारतीय परम्परा में वेद के तीन काण्ड माने जाते हैं–कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञानकाण्ड। इन तीन काण्डों का क्रमशः वेद, आरण्यक और उपनिषदों में विस्तार है। आत्मसाक्षात्कार में तीन बाधक हैं–मल, विक्षेप और आवरण। इन तीनों बाधाओं का निवारण क्रमशः कर्म, उपासना और ज्ञान से होता है। इसी दृष्टि का विस्तार गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के द्वारा किया गया है। भारतीय चिन्तन का आधार यही समग्र दृष्टि है। पश्चिम के विद्वान् भले ही इससे सहमत न हों, किन्तु भारतीय परम्परा इस सम्बन्ध में स्पष्ट है।

पीठाचार्य, धर्मदर्शनसंस्कृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर